# पूज्य लालचंदभाई का प्रवचन
# भिंड, ता. ६-४-१९८९
# श्री समयसार, गाथा १३, प्रवचन नंबर P०९

ये श्री समयसारजी परमागम शास्त्र हैं| जो अपना शुद्धात्मा को बताने वाला शास्त्र हैं| ये निमित्त रूप हैं और ये आत्मा हैं उपादानरूप हैं| तो जिनेंद्र भगवान की वाणी अपने शुद्धात्मा का स्वरूप को बताने वाली हैं| इसकी तेरह नंबर की ये गाथा का विवेचन चलता हैं| आत्मा को आजतक आत्मदर्शन यानि आत्मा कि अनुभूति नहीं हुई हैं| ये कैसे आत्म दर्शन हो जाय, अज्ञान का नाश कैसे हो, इसका एक ये प्रकरण तेरह नम्बर की गाथा में है| इसका पहला पैराग्राफ पूरा हो गया हैं| अभी दूसरा पैराग्राफ चलेगा। **बाह्य (स्थूल) दृष्टि से देखा जाए तो**, यानि अज्ञान से देखा जाए तो, सम्यकज्ञान से न देखा जाए और अज्ञान से देखा जाए तो, तो, अज्ञान से देखा जाए तो, क्या दिखता है- वो पहले बताते हैं।

**बाह्य स्थूल दृष्टि से देखा जाये तो**:- **जीव-पुद्गलकी अनादि बंधपर्यायके समीप जाकर**, जीव और पुद्गल दोनों स्वभाव से भिन्न-भिन्न होने पर भी, जिसको चेतन और जड़ के विभाग की दृष्टि नहीं हैं और दो के बीच में अत्यंत अभाव होने पर भी, अत्यंत भिन्नता होने पर भी, अत्यंत अभिन्न लगता हैं, ऐसी अज्ञान की द्रष्टि से देखा जाए तो, अनादि बंध पर्याय के समीप, यानि भावबन्ध के समीप जाकर देखे तो, या तो, जो भावइन्द्रिय हैं इसके समीप जाकर देखे तो, **एकरूपसे अनुभव करने पर**, जो भगवानआत्मा और पुद्गल भिन्न-भिन्न होने पर भी, उसको अपने आप द्रष्टि के दोष से भेदज्ञान का अभाव होने पर, अज्ञानभाव से देखे तो, देह और आत्मा एक लगता हैं| और आत्मा और शुभाशुभ भाव एक लगते हैं, **एकरूप से अनुभव करने पर यह नौ तत्त्व भूतार्थ हैं सत्यार्थ हैं**। आहाहा|

गाथा हैं, क्या? कि भूतार्थ नय से तू नौ तत्त्व को जान। आजतक अज्ञानी ने क्या किया? क्या कहा? कि अभूतार्थ नय से नौ तत्त्व को जाना। कि जीव पुद्गल का कर्ता हैं और पुद्गल से जीव का परिणाम होता हैं| कभी कर्ता-कर्म संबंध न हो तो कुछ नहीं, निमित्त-नैमित्तिक संबंध तो हैं ना। आहाहा| तो ये नौ तत्त्व अभूतार्थ नय से अनंत काल से जाना। यानि नौ तत्त्व से भिन्न आत्मा हैं ऐसा नहीं जाना। नौ तत्त्व और भगवानआत्मा ये स्वभाव से ही भिन्न-भिन्न हैं| एकत्व हुआ नहीं था भूतकाल में, अभी भी एकत्व हुआ नहीं हैं और भावी काल में भी एकत्व होने वाला नहीं हैं, विभक्त हैं| तो भी अपनी दृष्टि के दोष से, ये रागादि भाव और मैं एक हूँ, ऐसी उसकी दृष्टी हो गई हैं| तो ऐसे देखो तो ये **नौ तत्त्व भूतार्थ हैं और सत्यार्थ हैं**। यानि अज्ञान सत्यार्थ हैं| क्या कहा? ऐसे अज्ञान में भ्रांति हो गई। तो ऐसे अज्ञान सत्यार्थ हैं| आहाहा|

मैं राग का करने वाला हूँ और दुःख का भोगने वाला मैं हूँ। बाह्य स्थूल द्रष्टि से वो देखते हैं, तो उस अपेक्षा से, आहाहा| वो ठीक हैं| मगर, यानि उसका अज्ञान सिद्ध हो गया। क्या? अज्ञान ठीक है- ऐसा नहीं। ये अज्ञान हुआ इस द्रष्टि से तो, अज्ञान की भी अस्ति हैं| क्या कहा? अज्ञान की जो अस्ति न हो तो, अज्ञान टालने का उपदेश भी व्यर्थ हो। आहाहा| अनादि का अज्ञान क्यों है? कि जड़-चेतन भिन्न-भिन्न होने पर भी, राग और चैतन्य परमात्मा भिन्न-भिन्न होने पर भी, उसको एक लगता हैं| वो बंध के समीप


Version 1: http://AtmaDharma.com or http://AtmaDharma.org Please report errors to rajesh@AtmaDharma.com

जाकर देखते हैं तो एक लगता हैं। इन्द्रियज्ञान की द्रष्टि से देखें तो एक लगता हैं। राग की दृष्टी से देखें तो, एक लगता हैं, उसको। ऐसा अज्ञान भी हैं, ऐसा अज्ञान भी हैं। पर्याय में अज्ञान नहीं हैं ऐसा नहीं हैं। स्वभाव से आत्मा, ज्ञायक, ज्ञाता होने पर भी, जो ज्ञाता-दृष्टा को भूल जाता हैं और देहादि रागादि को मेरा मानता हैं, तो अज्ञान प्रगट होता हैं। ऐसी उपलक ऊपर-ऊपर, उपरी दृष्टि से देखो तो, ये नौ तत्त्व भूतार्थ दिखते हैं और ये प्रमाण का विषय कहा। प्रमाण ज्ञान के विषय में आगम प्रमाण और अध्यात्म प्रमाण।

प्रमाण ज्ञान में सब समाता हैं। शुद्ध पर्याय भी आती हैं और अशुद्ध पर्याय भी आती हैं। मगर प्रमाण ज्ञान से बाहर जाना नहीं और प्रमाण में अटकना नहीं। तो सारा सामान्य जगत तो प्रमाण से बाहर चला गया, प्रमाण में वर्तुल में भी आया नहीं। और थोड़ा जीव, अल्प जीव, पर के साथ मेरा कुछ संबंध नहीं हैं, मेरा द्रव्य, गुण, पर्याय की वर्तुल में मेरा सब कार्य क्षेत्र पूरा होता हैं। तो प्रमाण में आ गया, मगर प्रमाण में से जो निश्चयनय निकालता नहीं हैं, वो अज्ञानी रह जाता हैं। प्रमाण का पक्ष हैं। प्रमाणाभास हैं, प्रमाण नहीं हैं। सविकल्प प्रमाण, सम्यक प्रमाण नहीं हैं। प्रमाण से मात्र पदार्थ की सिद्धि होती हैं, मगर प्रयोजन की सिद्धि होती नहीं हैं। अब प्रमाण में से जब प्रयोजन की सिद्धि होती हैं, अनेकांत में से सम्यक एकांत निकालता हैं, तो सम्यक एकांतपूर्वक अनेकांत का ज्ञान जरूर होता हैं। तब सच्चा प्रमाण होता हैं, तो पदार्थ की सिद्धि सम्यकज्ञान में होती हैं। मिथ्याज्ञान में पदार्थ की सिद्धि भी नहीं हैं और प्रयोजन की सिद्धि भी नहीं हैं। ज्ञान ही नहीं। प्रमाण ज्ञान तो सम्यग्ज्ञान हैं। आहाहा। सविकल्प प्रमाण भी सच्चा प्रमाण नहीं हैं। वो सम्यक प्रमाण निर्विकल्प ध्यान में प्रमाण ज्ञान का जन्म होता हैं। और प्रमाण ज्ञान का जन्म भी सम्यक एकांत पूर्वक होता हैं।

प्रमाण ज्ञान का विषय शुद्धनय नहीं हैं, शुद्धनय का विषय प्रमाण ज्ञान नहीं हैं। शुद्धनय का विषय तो अकेला शुद्धात्मा हैं। उसमें दृष्टि देने से सम्यकज्ञान प्रगट होता हैं। और मैं ज्ञायक हूँ ऐसे सम्यक एकांतपूर्वक अतीन्द्रिय आनंद की पर्याय का जन्म होता हैं। तो सम्यक एकांतपूर्वक अनेकांत का ज्ञान होता हैं। उत्पाद, व्यय, ध्रुव युक्तम् सत् का पदार्थ का ज्ञान, अनुभव में होता हैं। स्याद्वाद का जन्म, अनेकांत का जन्म, अनुभूति के काल में होता हैं। शास्त्र का लक्ष्य से स्याद्वाद का जन्म होता नहीं हैं। शास्त्र तो हमने बहुत पढ़ा, हम हमारी बात करते हैं, कोई पर की बात इधर मना हैं। प्रमुख साहब ने लिखा हैं यहाँ बोर्ड, कि विकथा यहाँ मना हैं। हम अपनी बात करते हैं। अनंत-अनंत काल बीते, हम द्रव्यलिंगी मुनि भी हुए और नौवें ग्रैवेयक तक दुख भोगने के लिये गए। क्या कहा? स्वर्ग में गए मगर दुःख (भोगने के लिए)। आहाहा। अनेकांत और स्याद्वाद के नाम से, स्याद्वाद अनेकांत और प्रमाण ज्ञान का विषय है। नय का विषय कोई अलग अपूर्व हैं। हैं तो उसमें ही। हैं तो अनेकांत में ही, सम्यक एकांत छुपी हुई हैं। अनेकांत को छोड़ो तो सम्यक एकांत नहीं निकलेगा। और अनेकांत के पक्ष में पड़ो तो भी सम्यक एकांत नहीं निकलेगा। आहाहा।

स्वर्ण रहता हैं ना, वो स्वर्ण पाषाण में रहता हैं। अन्ध पाषाण में स्वर्ण रहता नहीं हैं। ऐसे जो नौ तत्त्व हैं, वो (स्वर्ण) पाषाण की जगह पर हैं। शांति से जरा सुनना। आहाहा। हैं तो ये नौ तत्त्व में छुपी हुई आत्म ज्योति। स्वर्ण पाषाण, स्वर्ण पाषाण में स्वर्ण रहता हैं, अन्ध पाषाण में स्वर्ण रहता नहीं हैं। तो ये जो नौ तत्त्व हैं वो स्वर्ण पाषाण हैं, अन्ध पाषाण नहीं हैं। उसमें अपनी ज्ञायक ज्योति विराजमान हैं, निकालना


Version 1: http://AtmaDharma.com or http://AtmaDharma.org Please report errors to rajesh@AtmaDharma.com

चाहिये। जगत के पदार्थ, जीवों तो बाह्य में घुमते हैं, प्रमाण से बाहर। और विद्वान लोग प्रमाण में अटक जाते हैं, हम भी अटक गए थे, पूर्व में। मैं मेरी बात करता हूँ, मैं आपकी बात नहीं करता। आहाहा।

मगर जब प्रमाण में आया तो भी आत्मा की अनुभूति नहीं हुई। तो कोई और बात रह गई हैं। उत्पाद-व्यय-ध्रुव-युक्तम सत तक आया, गुण-पर्यायवत् द्रव्यम में तो आया, तत्वार्थ सूत्र में पाँच भाव जीव भाव हैं, वहाँ तक भी आया। मगर उसमें, आहाहा! आत्मा की अनुभूति होती नहीं हैं। ये ज्ञेय हैं, सब उत्पाद-व्यय-ध्रुव-युक्तम् सत् ये ज्ञेय हैं, ध्येय नहीं हैं। हाँ! वो ज्ञेय में ध्येय हैं, ज्ञेय में ध्येय हैं, छुपा हैं। इसके लिए एक दृष्टान्त देता हूँ सादा दृष्टान्त - मैं सबको पूछता हूँ मगर जवाब नहीं माँगता, पूछता तो हूँ मगर जवाब नहीं माँगता। कि जैसे मौसम्बी हैं मौसम्बी, तो मैं पूछता हूँ प्रश्न कि मौसंबी हैं सो हेय हैं कि उपादेय हैं किसीको बोलना नहीं, बोलना (नहीं) जबाव नहीं देना, समझे? विचार करना कि ये क्या प्रश्न आया? दो में से एक तो हो ना। या तो उपादेय हो या हेय हो। दो में (से) एक होना चाहिए। दोनों में से एक भी नहीं हैं, वो तो ज्ञेय हैं। अच्छा! जो हेय कहो तो रस चला जाएगा, और उपादेय कहो तो, सब छिलका पेट में आ जाएगा। और डॉक्टर के पास जाना पड़ेगा। समझे? तो ये जो मौसंबी हैं, ज्ञेय हैं। ऐसे प्रमाण का विषयभूत पदार्थ जो हैं, वो ज्ञेय हैं। उत्पाद-व्यय-ध्रुव-युक्तम् सत् परिणाम से सहित जो आत्म द्रव्य हैं, वो ज्ञेय हैं। और परिणाम से रहित आत्मा हैं वो उपादेय ध्येय हैं।

तो आचार्य भगवान फरमाते हैं कि अनादि काल से बंध के वश, शुद्धअशुद्ध पर्याय का पिण्ड, उसको आत्मद्रव्य कहा हैं, मगर जीव तत्त्व कहा नहीं हैं। जीवद्रव्य में जीव तत्त्व छुपा हैं। छह द्रव्य हैं, वो परिणाम सहित का द्रव्य हैं। पर्याय सापेक्ष द्रव्य हैं। अहाहा! मगर जो जीव तत्त्व, पर्याय सहित होने पर भी पर्याय से रहित आज तक देखा नहीं, आज तक देखा नहीं। और पर्याय से सहित हो, आत्मा ऐसा ही हो, और अंतर द्रष्टि करे तो द्रव्य उपादेय नहीं लगे। क्योंकि पर्याय से सहित द्रव्य माना हैं तो पर्याय भी उपादेय, मिथ्यात्व की पर्याय भी उपादेय आ जायेगी। मगर ये नौ तत्त्व परिणाम अभूतार्थ होने से अनुभूति हो सकती हैं। क्या कहा? फिर से।

समयसार की चौदहवीं गाथा में एक प्रश्न आया कि प्रभु! आप कहते हैं कि आत्मा का अनुभव करो, पर हम अनुभव कैसे कर सकें। हमारे साथ आठ प्रकार का कर्म का संबंध हैं। अभी हमारी मनुष्य पर्याय हैं। और ज्ञान-दर्शन गुण भी दिखता हैं भेद। और हीनाधिक अवस्था भी हैं मौजूद (पर्याय)। और राग भी मौजूद हैं। ऐसा पाँच भाव के सद्भाव में यानि पर्याय के सद्भाव में, पर्याय से रहित, पर्याय के सहित होने (पर भी) तो आप कहते हैं कि अनुभूति हो सकती हैं। तो कैसे अनुभूति हो सकती है? सुन देख कि ये सब अभूतार्थ होने से अनुभूति हो सकती हैं।

जब तेरा ज्ञान अन्तर्मुख होगा तब पाँच भाव बाहर रह जायेगा। अनुभव का विषय बनने वाला नहीं हैं। अनुभव का विषय तो एक शुद्धात्मा ही बनेगा। पाँच भाव होने पर भी अनुभूति हो सकती हैं। अभूतार्थ यानि स्वभाव में उसका अभाव है। उसको अलोक में भेजने की बात नहीं हैं। पर्याय को अलोक में मत भेज। पर्याय का अस्तित्व पर्याय में रख, मगर पर्याय मेरे में नहीं हैं। मेरे पर्याय से मैं रहित हूँ। हाँ! यह रहित-सहित की रमत हैं। रहित-सहित की रमत हैं। जिसको रहित का श्रद्धान ज्ञान होता हैं, वो ही (उस) समय, काल भेद नहीं हैं, उसको पर्याय से मैं सहित हूँ, ऐसे ज्ञेय का ज्ञान हो जाता हैं। ध्येय का ध्यान और


Version 1: http://AtmaDharma.com or http://AtmaDharma.org Please report errors to rajesh@AtmaDharma.com

ज्ञेय का ज्ञान। ध्येय तो पर्याय से रहित हैं और ज्ञेय तो पर्याय से सहित हैं। समय एक हैं। समय एक हैं। तो कोई बाधा आती नहीं हैं। आहाहा।

जैसे केवली भगवान एक समयमें उत्पाद, व्यय, ध्रुव को जानते हैं। ऐसे श्रुतज्ञानी एक समय में उत्पाद, व्यय, ध्रुव को जानता हैं। कि तीन को क्यों जाने कि तीन नहीं हैं, एक हैं। तीन कहाँ है? ज्ञेय एक हैं। आहाहा। ज्ञेय एक हैं। और जो ज्ञेय हैं, उत्पाद, व्यय, ध्रुव युक्तम् सत् वो ध्येय नहीं हैं। आहाहा! ध्येय तो ध्रुव हैं, ध्येय तो ध्रुव हैं। और ध्यान करनेवाला उत्पाद-व्यय-पर्याय हैं। और जब ध्येय और ध्यान की एकता होती हैं, तो ध्याता हो जाता हैं। ध्याता का नाम स्वज्ञेय हैं। ध्याता का नाम स्वज्ञेय हैं। ऐसे उपलक (ऊपर-ऊपर) द्रष्टि से देखो तो यानि पर से भिन्न प्रमाण में आकर देखो तो, ये सब नौ तत्त्व भूतार्थ हैं, सत्यार्थ हैं।

मगर उसमें साध्य की सिद्धि होती नहीं हैं। अभी साध्य की सिद्धि अनंत काल से नहीं की, प्रमाण में अटका, विद्वान लोग प्रमाण में अटक गए।आहाहा। प्रमाण में से, कार्तिकेय अनुप्रेक्षा नाम का शास्त्र हैं, भावलिंगी संत का लिखा हुआ। उसमें फरमाते हैं कि प्रमाण में से जो कोई निश्चयनय निकालता हैं, वो जिनवचन में कुशल हैं, जिनवचन में कुशल हैं। प्रमाण में से, मौसंबी में से कोई रस निकाले, तो कुशल हैं। मौसंबी में से कोई (रस) निकलना नहीं जाने, ऐसा-ऐसा करे (छिलका सहित मौसम्बी खावे) तो बुद्धू हैं, क्या कहा? पशु हैं। ऐसा-ऐसा खाता हैं क्या खाता है? उसमें से रस निकाल ले तो छिलका बाहर। ऐसे प्रमाणज्ञान के विषय में शुद्ध-अशुद्ध पर्याय का पिंड वो द्रव्य हैं, जीवद्रव्य हैं, जीवतत्त्व नहीं हैं। आहाहा। तो इसमें से प्रमाण में से जो निश्चयनय निकालता हैं, वो जिनवचन में कुशल हैं और अनुभूति के काल में उसको पदार्थ की सही सिद्धि होती हैं। पदार्थ का खंडन नहीं होता हैं। सिद्धांत का खंडन नहीं होता हैं। सिद्धांत अनुभूति के काल में सिद्ध होता हैं। आहाहा। खंडन तो मिथ्यात्व का होता हैं, पदार्थ का खंडन होता नहीं हैं। कौन खंडन करे उत्पाद-व्यय-ध्रुव युक्तं सत् का? खंडन करने वाला कोई हैं ही नहीं। हाँ, मिथ्यात्व का खंडन करने की बात यहाँ चलती हैं। वो तो करना ही चाहिए। इसके लिए तो शिविर हैं। शिविर का प्रयोजन क्या है?

आहाहा। आत्मा का अनुभव हो जाए और अज्ञान दूर हो जाए, तो अज्ञानजन्य जो चारगति का दुख मिट जाये, और अल्पकाल में मुक्ति हो जाये। असंख्य समय लगता हैं, अनंत समय लगता नहीं हैं। अनुभव के काल के बाद अनंत समय नहीं लगता हैं, असंख्य समय में मुक्ति हो जाती हैं। आहाहा।

**और एक जीव द्रव्य के स्वभाव के समीप** अभी प्रमाण में से नय निकालने की बात आचार्य भगवान, प्रमाण सिद्ध किया, प्रमाण ज्ञान सिद्ध किया। प्रमाण ज्ञान का विषय नौ तत्त्व हैं। या नौ तत्त्व परिणमित जीव हैं, परिणामी जीव हैं। परिणामी जीव प्रमाण का विषय हैं। अपरिणामी जीव, शुध्दनय का विषय हैं। परिणामी द्रव्य में से अपरिणामी निकालो। आहाहा। परिणामी द्रव्य पर्याय सापेक्ष द्रव्य, पर्याय सहित द्रव्य, परिणमता भी हैं, परिणमता हैं। तो एक उसमें से आचार्य भगवान प्रमाण ज्ञान में लाकर, प्रमाण ज्ञान में लाकर, याने पर से भिन्न पड़ गया। प्रमाण ज्ञान पर से भिन्न पाड़ता हैं। और शुध्दनय पर्याय से भिन्न पाड़कर अनुभूति करा देता हैं। प्रमाणज्ञान, पर से भिन्न पाड़कर अपना द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव में लाता हैं। और शुध्दनय प्रमत्त-अप्रमत्त से रहित बताकर शुद्धात्मा का दर्शन कराता हैं। आहाहा। ये बात अभी आचार्य भगवान फरमाते हैं। प्रमाण स्थापित किया, प्रमाण की स्थापना की, मौसम्बी लेना, पत्थर नहीं


Version 1: http://AtmaDharma.com or http://AtmaDharma.org Please report errors to rajesh@AtmaDharma.com

लेना। मौसम्बी चाहिए, जिसमें रस हैं| ऐसे नौ तत्त्व ये मौसम्बी के स्थान पर हैं| मगर चैतन्य रस उसमें से जुदा निकालना।

**और एक जीव द्रव्य के स्वभाव के समीप जाकर**, पुद्गल के समीप जाकर देखता था तो आत्मा का दर्शन नहीं होता था। राग के लक्ष से आत्मा का दर्शन नहीं होता था। शास्त्र ज्ञान के लक्ष करने से आत्मज्ञान नहीं होता था। अभी उसका लक्ष छोड़ दे और एक जीव द्रव्य के उसमें नौ था, उसमें नौ था। नौ व्यवहारनय का विषय हैं| एक हैं ये निश्चयनय का विषय हैं| **एक जीव द्रव्य के स्वभाव के समीप जाकर**, आहाहा| यानि नौ तत्त्व का मैं कर्ता हूँ, वो बुद्धि छोड़ दे और नौ तत्त्व ज्ञान का ज्ञेय हैं, वो बुद्धि भी छोड़ दे। उसका लक्ष सर्वथा छोड़ दे। नौ तत्त्व छोड़ना नहीं हैं, नौ तत्त्व का लक्ष छूट जाता हैं| जब आत्मा, आत्मा के लक्ष पर आता हैं, अंदर में जाता हैं उपयोग, जो बहिर्मुख उपयोग था, वो उपयोग जात्यान्तर होता हैं| तो अतीन्द्रिय ज्ञान नया प्रगट होता हैं| तो ऐसे स्वभाव के समीप जाकर, अनुभव करने पर, ये नौ तत्त्व अभूतार्थ, असत्यार्थ हैं। अभेद में भेद दिखता नहीं हैं| भेद, भेद में होने पर भी, नौ तत्त्व के भेद, भेद में होने पर भी, भेद को भेद का स्थान में रखो, अभेद में नहीं मिलाओ। अभेद में मिलाता हैं, उसको आत्मदर्शन होता नहीं हैं| (मुमुक्षु सही हैं)| सही हैं| अच्छा|

ऐसा हैं, जब ये ज्ञान गोष्ठी का आयोजन होता हैं, तो इसमे कुछ जीव का हित होने वाला होगा, तो ये बनाव बनता हैं| नहीं तो ये बनाव बनता नहीं हैं। किसी को थोड़ा समझ में आवे, ज्यादा समझ में आवे, कोई अभिमुख हो जावे, सम्यक्त्व सन्मुख हो जाता हैं, अरे! किसी को सम्यकदर्शन भी हो जाता हैं| पंडाल में हो सकता हैं, मंदिर में जाने की जरूरत नहीं हैं| ये मंदिर हैं भगवान अंदर विराजमान हैं, देह देवल में भगवानआत्मा विराजमान हैं| लक्ष फेर दे, लक्ष फेर दे। ऐसा-ऐसा करता हैं। छोड़ दे। ऐसा कर दे बस, इतनी देर हैं|

परिणाम परद्रव्य हैं, नौ तत्त्व परद्रव्य हैं, परद्रव्य का लक्ष छोड़ दे, परद्रव्य को छोड़ने की बात नहीं हैं| आहाहा पदार्थ के त्याग की बात नहीं हैं| उसका लक्ष वहाँ से हटा दे। जाननेका तो आता हैं तेरे को, वो ज्ञेय बदल दे, ध्येय बदल दे, ध्येय बदल दे, ज्ञेय बदल दे। आहाहा| इतनी देर हैं| तो आचार्य भगवान फरमाते हैं कि **जीव द्रव्य के स्वभाव के समीप जाकर अनुभव करने पर**, आहाहा| **वो नौ तत्त्व अभूतार्थ और सत्यार्थ हैं**। आहाहा! तो नौ तत्त्व अभूतार्थ असत्यार्थ हैं, उसका मर्म समझे नहीं और नौ तत्त्व को उड़ाता हैं| अज्ञानी जीव व्यवहार के पक्ष वाला, ऐसे आक्षेप करता हैं ज्ञानी पर। उसको समझ में आता नहीं हैं| अभूतार्थ का अर्थ मेरा अभेद स्वभाव में भेद नहीं हैं| रस में छिलका नहीं हैं, रस में छिलका नहीं हैं| छिलका अभूतार्थ हैं, हाँ! अभूतार्थ हैं| हैं, हैं मगर इसमें नहीं हैं| रस में नहीं हैं ऐसे चैतन्य चमत्कार भगवानआत्मा में रागादि परिणाम नहीं हैं| आहाहा| अभूतार्थ का अर्थ हैं स्वभाव में त्रिकाल अभाव हैं, स्वभाव में नौ तत्त्व का त्रिकाल अभाव हैं| मोक्ष की पर्याय भी इस मुक्त स्वभाव में नहीं हैं| मुक्त स्वभाव में तो ज्ञान-दर्शन-चारित्र-सुख हैं| जिसका लक्षण परमपारिणामिक भाव हैं| वो क्षायिक लक्षणवाली पर्याय आत्मा में नहीं हैं, तो उदय लक्षणवाली पर्याय तो आत्मा में(कैसे होगी) मत देख। मेरे आत्मा में राग हैं, मत देख। एक दफे भगवानआत्मा को स्वभाव के समीप जाकर देख तो आत्मा का दर्शन होगा। उस टाइम राग मेरे में हैं, नहीं दिखेगा। अरे! सम्यकदर्शन मेरे में हैं, ऐसा नहीं दिखेगा।


Version 1: http://AtmaDharma.com or http://AtmaDharma.org Please report errors to rajesh@AtmaDharma.com

कश्मीरीलाल जी, आहाहा! अनंत गुण का पिण्ड भगवान सामान्य, सामान्य का दर्शन होता हैं, तब विशेष, आहाहा! विशेष का अज्ञात हो जा! ऐसे इष्टोपदेश में एक चवालीसवी गाथा हैं, पूज्यपाद आचार्य ने लिखी हैं| उसमें अनुभव की विधि बताकर फरमाते हैं कि जो जीव विशेष का अज्ञात होता हैं, समझे? यानि विशेष जो पर्याय ज्ञान का ज्ञेय नहीं बनती हैं, अकेला सामान्य ज्ञान का ज्ञेय बनता हैं तब अनुभव होता हैं| तो निर्विकल्प ध्यान होता हैं तो बंधता नहीं हैं और छूटता हैं, ऐसा स्लोक हैं| निर्विकल्प ध्यान आता हैं तो बंधता नहीं हैं, और छूटता हैं| तो निर्विकल्प ध्यान कब आवे? कि विशेष का अज्ञात हो तब। यानि पर्याय का लक्ष छूटे तब (विशेष) वो चौदहवी गाथा में आया कि पर्याय को जानना सर्वथा बंद कर दे। साहब! कथंचित बंद करूँ तो क्या? आहाहा! यानि कथंचित जानूँ तो क्या? स्याद्वाद है|

अरे! अनुभव के बाद स्याद्वाद का जन्म होता हैं| अनुभव कैसे होवे, वो बात अलग हैं, और अनुभव के बाद क्या हैं, वो बात अलग हैं| अनुभव तो हुआ नहीं और ज्ञानी की नकल करता हैं| वो भी व्यवहारनय को जानता हैं| बारहवीं गाथा में चोखा स्पष्ट लिखा हैं, स्पष्ट लिखा हैं कि व्यवहारनय जाना हुआ प्रयोजनवान हैं| तो मैं तो पर्याय को जानता हूँ, उसमें क्या तकलीफ? ज्ञानी भी जाने और मैं भी जानू| जहाँ तक तू वो पर्याय को जानता हैं तहाँ तक तो वो मिथ्यादृष्टि हैं| (पर्याय का) कर्ता हैं (ऐसा मानता हैं) तहाँ तक तो मिथ्यादृष्टि हैं ही। धन्नालाल जी साहब! आहाहा! ये ज्ञान गोष्ठी हैं ना। आहाहा! अज्ञान गोष्ठी नहीं हैं| पर्याय को मैं कर्ता हूँ, वो तो अज्ञान गोष्ठी हैं| और पर्याय को मैं जानता हूँ, वो भी अज्ञान गोष्ठी हैं| छोड़ दे लक्ष  छोड़ दे, थोड़ी देर के लिए तो छोड़ दे, बाद में आत्मा का अनुभव करने के बाद, वो जो पर्याय ज्ञान का ज्ञेय होती हैं, वो हेयरूप ज्ञेय हुआ। अभी तेरे को उपादेयरूप ज्ञेय बनता हैं| अभी तू पर्याय को जानने की बात करता हैं ना, वो तो वो उपादेयरूप ज्ञेय हो गया। आहाहा| और अनुभव के बाद पर्याय को ज्ञानी जानता हैं, वो ज्ञेय, हेयरूप ज्ञेय हैं, उपादेयरूप ज्ञेय नहीं हैं| उसका। उपादेयरूप ज्ञेय तो एक परमात्मा आ गया दृष्टि में, तो आ गया बस। आहाहा|

पर्याय जानने में आता हैं, पर्याय जानने पर पर्यायदृष्टि नहीं होती हैं अनुभव के बाद। अनुभव के पहले पर्याय को जानने से पर्यायदृष्टि (होती हैं)| अनुभव के बाद पर्याय को जानने से पर्यायदृष्टि होती नहीं, उसको जानना व्यवहार हैं| वो भी काम चलाऊ थोड़ी देर के लिए, निर्विकल्प ध्यान में टिक नहीं सकता हैं मेरा उपयोग। आहाहा!, तो ज्ञान का ज्ञेय हो जाता हैं| मगर ज्ञान का ज्ञेय यही हैं, तो फिर से निर्विकल्प ध्यान आता नहीं हैं| और जो वजन आ जाता हैं, तो मिथ्यादृष्टि हो जाता हैं|

आदरणीय बाबूजी युगल जी: बहूत बढ़िया| जानना नहीं हैं।

पूज्य लालचंदभाई: हाँ! जानना नहीं हैं, जानने में आता हैं| ठीक हैं। मगर ये मेरा जानने का विषय हैं, ऐसा ज्ञानी मानता नहीं हैं| जिसका लक्ष से आनंद की वृध्दि न हो, वो जानने का विषय नहीं हैं| जिसका लक्ष से आनंद की प्राप्ति तो हुई, मगर जिसका बार-बार जानने से आनंद की वृद्धि होती हैं, वो ही एक ही ज्ञेय हैं, दूसरा ज्ञेय हैं नहीं। ऐसी बात हैं|

भिंड भाग्यशाली हैं| आहाहा| स्वयं उछलती|आहाहा| जीवद्रव्य के स्वभाव के समीप जाकर देख, पर्याय का लक्ष छोड़ दे, आहाहा| मैं पर्याय का कर्ता हूँ, वो लक्ष छोड़ दे और पर्याय ज्ञान का ज्ञेय हैं वो लक्ष छोड़ दे। क्योंकि भेद के लक्ष से अभेद की अनुभूति होती नहीं हैं| भेद के लक्ष से रागी प्राणी को


Version 1: http://AtmaDharma.com or http://AtmaDharma.org Please report errors to rajesh@AtmaDharma.com

अवश्य राग होता हैं| राग को छुड़ाने के लिये भेद का लक्ष छुड़ाना हैं| राग की उत्पत्ति का जब व्यय होता हैं, तब वीतराग भाव प्रगट हो जाता हैं| तो पर्याय का लक्ष छोड़ दे और स्वभाव के समीप आकर देख, स्वभाव के समीप आकर, क्या कहा? प्रभु| तू सुन तो सही तेरी प्रभुता कैसी हैं| आहाहा प्रभु! तू सुन! सर्वज्ञ भगवान सबको विभु, प्रभु कहकर बुलाते हैं। कोई पामर नहीं हैं, कोई मनुष्य नहीं हैं, कोई स्त्री पुरुष नहीं हैं| किसी को कर्म का बंध हुआ ही नहीं और कर्म का उदय किसी को आता ही नहीं और कर्म का लक्ष कोई करता ही नहीं हैं, और उसकी दशा में मिथ्यात्व होता ही नहीं हैं, ऐसा ज्ञायक तत्त्व मैं हूँ, मैं तो परमात्मा हूँ। परमात्मा का ध्यान कर तो परमात्मा हो जायेगा। आहाहा|

**स्वभावके समीप जाकर अनुभव करनेपर वे अभूतार्थ हैं** जो पहले भूतार्थ कहा, उसको अभूतार्थ कहा। आहाहा| पहले एकत्वबुद्धि थी तो ऐसे अज्ञान की परिस्थिति बनती थी। अभी जो स्वभाव के समीप जाकर देखा तो अज्ञान टल गया, तो उसमें नौ तत्त्वमें आत्मबुद्धि छूट जाती हैं| आत्मबुद्धि रहती नहीं हैं| आत्मामें आत्मबुद्धि आ गई और नौ तत्त्व ज्ञान का ज्ञेय बनता हैं, कर्ता का कर्म बनता नहीं हैं, क्योंकि अकर्ता को कर्म नहीं हो और ज्ञाता का कर्म नहीं होता। नौ तत्त्व ज्ञाता का ज्ञेय होता हैं|

**(वे जीव के एकाकार स्वरूप में नहीं हैं)**| कोष्ठक किया। जीव का जो अभेद सामान्य स्वभाव हैं, उसमें नौ तत्त्व का भेद नहीं हैं| अनेक का एकमें अनेक नहीं हैं, एक में अनेक नहीं हैं| एक ज्ञायकभाव हूँ, मैं तो। अप्रमत्त दशा भी मेरे में नहीं हैं| शुद्धोपयोगकी दशा भी मेरे में नहीं है? नहीं हैं, तेरे में शुद्धोपयोग तेरे में नहीं हैं| क्या बात है? निश्चय रत्नत्रय का परिणाम मेरे में नहीं हैं| व्यवहार रत्नत्रय के परिणाम की बात तो दूर हो, वो तो जाति भेद हैं| जिसकी जाति एक हैं वो परिणाम भी मेरे में नहीं हैं| आहाहा|

द्रष्टि का विषय द्रष्टि में आये बिना विकल्प टूटेगा नहीं। निर्विकल्प ध्यान आयेगा नहीं। निर्विकल्प ध्यान के बिना तो सम्यग्दर्शन का जन्म होता नहीं। वे जीव के एकाकार स्वरूप में नहीं हैं| भले हो! नौ तत्त्व, नौ तत्त्व में भले हो, मगर मेरे में नहीं हैं| आहा| मौसम्बी का रस में छिलका नहीं हैं, छिलका-छिलका में हो, छिलका और रस एक क्षेत्रीय होने पर भी जुदा-जुदा रहता हैं, एक क्षेत्रीय रहने पर भी जुदा-जुदा रहता हैं| ऐसे आकाश के एक क्षेत्र में, आत्मा के एक क्षेत्र में नहीं, आकाश के एक क्षेत्र में नौ तत्त्व भी हैं और जीव तत्त्व भी हैं, मगर जुदा-जुदा रहता हैं| क्योंकि आकाश के क्षेत्र में तो सब रहता हैं| मगर मेरे क्षेत्र में तो नौ तत्त्व (नहीं है), आकाश का क्षेत्र में हैं, मैं भी हूँ और नौ तत्त्व भी हैं। मगर मेरे क्षेत्र में वो नौ तत्त्व नहीं हैं। स्व-क्षेत्र में पर क्षेत्र की नास्ति हैं| आहाहा|

**जीव के एकाकर स्वरूप में नहीं हैं**, हमको दिखाई नहीं दिया। अभेद की दृष्टि कि तो भेद दिखाई नहीं देता हैं| ऐसा एक सैंतीस नम्बर का श्लोक हैं| आधार से श्रद्धा दृढ़वान होती हैं| दृढ़ती हैं, दृढ़ता आती हैं| शास्त्र का आधार से।

**जो वर्णादिक अथवा रागमोहादिक भाव कहैं, वे सब ही इस पुरुष (आत्मासे) भिन्न हैं**। भिन्न होता हैं, ऐसा नहीं लिखा। एक-एक शब्द की कीमत हैं|

आदरणीय बाबूजी युगल जी: सदैव भिन्न हैं।

पूज्य लालचंदभाई: सदैव भिन्न हैं। आहा| वो मानता हैं सदैव अभिन्न हैं| दुःख मेरे से अभिन्न


Version 1: http://AtmaDharma.com or http://AtmaDharma.org Please report errors to rajesh@AtmaDharma.com

मानता हैं, हैं भिन्न। मानता हैं अभिन्न इसका नाम अज्ञान हैं। आहा।

आदरणीय बाबूजी युगल जी : जो अभिन्न हो (गया हो) तो फिर भिन्न कैसे कहें?

पूज्य लालचंदभाई: हाँ! जो अभिन्न हो गया तो दुःख का नाश होवे नहीं, कोई सिद्ध पर्याय प्रगट न हो। **इस पुरुष से भिन्न हैं इसलिए अंतर्दृष्टि से देखनेवालेको**, बहिर्दृष्टि नहीं, बहिर्दृष्टि से आत्मा का दर्शन नहीं होता हैं। आहाहा। नौ तत्त्व दिखायेगा। बहिर्दृष्टि से तो नौ तत्त्व आत्मारूप दिखायेगा। नौ तत्त्व नौ तत्त्वरूपे नहीं दिखने में आयेगा, बहिर्दृष्टि से। **मगर अन्तर्दृष्टि से देखनेवालेको यह सब दिखाई नहीं देते हैं**। अहाहा! तो स्वपरप्रकाशक का नाश होगा। क्या कहा? आत्मा भी दिखाई देवें और वर्णादि-रागादि भाव भी दिखाई देवें, तो स्वपरप्रकाशक की सिद्धि होती हैं? स्वपर प्रकाशक प्रमाण में आत्मा का अनुभव नहीं होता हैं। केवल स्वप्रकाशक के द्वारा ही आत्मा का अनुभव होता हैं। अभेद में भेद दिखता नहीं हैं। पर्याय की चक्षु सर्वथा बन्द हो जाती हैं और द्रव्यार्थिक चक्षु खुलकर आत्मा का दर्शन होता हैं। और स्वप्रकाशकपूर्वक स्वपरप्रकाशक हैं, तो व्यवहार हैं। स्वप्रकाशक को छोड़ता हैं तो, वह स्वपरप्रकाशक अज्ञान में जाता हैं। ऐसा अज्ञानी जीव निगोद में भी स्वपरप्रकाशक हैं। वो प्रमाण ज्ञान हैं। आहाहा।

प्रमाणज्ञान की दो व्याख्या हैं। एक द्रव्य का प्रमाण और एक ज्ञान की पर्याय का प्रमाण। विषय आया हैं अच्छा! सुनना बराबर। ये पहले श्लोक पूरा कर दूँ। **देखनेवाले को यह सब दिखाई नहीं देते**। **मात्र एक** मात्र, सिर्फ ONLY एक **सर्वोपरी तत्त्व ही दिखाई देता हैं**। आहाहा! सर्वोपरी है! आहाहा! भगवान आत्मा सर्वोपरी हैं। नौ तत्त्व में सर्वोपरी तत्त्व परमार्थ भगवानआत्मा हैं। **सर्वोपरी तत्त्व ही दिखाई देता हैं**। सर्वोपरी तत्त्व ही दिखाई देता हैं। तत्त्व ही। आहाहा! सम्यक एकांत कर दिया।

मुमुक्षु: सर्वोपरि तो मोक्ष होता हैं न!

उत्तर: नहीं! सर्वोपरी मोक्ष नहीं होता हैं। मोक्ष तो एक समय की पर्याय नाशवान हैं। और जीव का लक्षण इसमें नहीं हैं। जो जीव तत्त्व का लक्षण, परमपारिणामिक भाव हैं वो उसमें नहीं हैं। मोक्ष पर्याय कर्म के अभाव की अपेक्षा रखती हैं इसलिए सापेक्ष हैं। और भगवानआत्मा तो निरपेक्ष हैं। आहाहा! इसलिए मोक्ष के साथ मिलान करो तो भी मोक्ष की पर्याय के केवलज्ञान के साथ मिलान करो तो भी, भगवानआत्मा तो अनादि अनंत सर्वोपरि रहता हैं। केवलज्ञान के काल में भी केवलज्ञान सर्वोपरी नहीं होता हैं। केवली उसको सर्वोपरी नहीं जानता हैं। केवली अपनी आत्मा को सर्वोपरी जानता हैं, तो केवलज्ञान टिकता हैं और रहता हैं सादि अनंत काल।

आदरणीय बाबूजी युगल जी : मोक्ष जिसके सहारे रहता हैं वो सर्वोपरि हैं।

पूज्य लालचंदभाई: हाँ! मोक्ष जिसके सहारे होता हैं, वो सर्वोपरी तत्त्व हैं। **मात्र एक सर्वोपरी तत्त्व ही दिखाई देता हैं। केवल एक**, केवल ONLY मात्र फ़क्त एक ही **चैतन्यभावस्वरूप अभेदरूप आत्मा ही दिखाई देता हैं**। परिणाम में अभेद आत्मा दिखाई देता हैं, तो परिणाम भी कथंचित् अभेद होकर आत्मा बन जाता हैं। आहाहा। अभी प्रमाणका दो विषय क्या? ५-७ मिनिट बाकी है। हो जाएगा।...

प्रमाण का तो MOST IMPORTANT बात हैं। जो विद्वान के लिए तो बहुत अच्छी बात हैं। समजे? सब के लिए अच्छी हैं वैसे तो, प्रमाण के दो भाव हैं - एक द्रव्य का प्रमाण और एक ज्ञान की पर्याय का प्रमाण। द्रव्य के प्रमाण में क्या आता है? कि द्रव्य, पर्याय, वस्तु वो प्रमाण ज्ञान का विषय हैं। द्रव्य भी

आत्मा और पर्याय भी आत्मा। आहाहा! जो आत्मा द्रव्य का हैं वो ही आत्मा पर्याय का हैं। द्रव्य पर्याय वस्तु सारी, वो प्रमाणज्ञान का विषय हैं, समझे? एक बात। और ज्ञान की पर्याय का प्रमाण, कि उसमें स्व भी दिखे और पर भी दिखे, स्वपरप्रकाशक। स्व भी जानने में आवे और पर भी जानने में आवे। ज्ञान की पर्याय का प्रमाण, ज्ञान की पर्याय का प्रमाण, यानि प्रमाणज्ञान, यानि प्रमाणज्ञान। ज्ञान की पर्याय युगपत दो को जाने, द्रव्य पर्याय, द्रव्य पर्याय दो को जाने ना, तो उसका नाम प्रमाण ज्ञान हैं। और जो द्रव्य का प्रमाण हैं और द्रव्य पर्याय सारी वस्तु को जाने उसका नाम प्रमाणज्ञान, ये द्रव्य का प्रमाण। अभी द्रव्य का प्रमाण में से द्रव्य दृष्टि करना हो तो, पर्याय का निषेध कर कि पर्याय मेरे में नहीं हैं। तो अन्तर्दृष्टि हो जायेगी। तो आत्मा का अनुभव उसमें होता हैं। द्रव्य का प्रमाण में से निश्चय निकालना कि मैं सामान्य हूँ और विशेष नहीं हूँ। प्रमाणज्ञान में विधि निषेध नहीं हैं। द्रव्य भी हैं और पर्याय भी हैं। नित्य भी हूँ और अनित्य भी हूँ। उसमें "भी" आता हैं। प्रमाण में "भी" आता हैं। नय में "ही" आता हैं। नय में "ही" आता हैं। आहाहा। कि मैं सामान्य ही हूँ और विशेष नहीं हूँ। उसमें विधि निषेध नय में आता हैं। और बाद में विधि-निषेध का विकल्प भी छूट जाता हैं।

आज प्रकरण आया था 144 गाथा पर, आहाहा। कि मैं सामान्य हूँ ऐसा विकल्प, सामान्य में विशेष नहीं हैं ऐसा विशेष का विकल्प, दो ही विकल्प हैं। ये दोनों विकल्प कर्ता कर्म की प्रवृत्ति अज्ञान हैं। आहाहा। वो विकल्प छूटता हैं तब पक्षातिक्रांत होता हैं। तो जैसा हैं, ऐसा जानता है। तो प्रमाणज्ञान के विषय में, द्रव्य पर्याय दो हैं। उसमें से द्रव्य उपादेय हैं और पर्याय हेय, ऐसा निकालना उसका नाम निश्चय नय हैं। अभी एक बात बाकि रह गई ज्ञान की पर्याय में स्वपर दो जानने में आता हैं। समझ गए? तो दो जानने में आता हैं उसमें अनुभव नहीं होता है। अभी जाननहार जानने में आता हैं, पर जानने में नहीं आता। तो उसमें से निश्चयनय निकाल। ज्ञान की पर्याय का प्रमाण में निश्चय व्यवहार दो शामिल हैं। ज्ञान की पर्याय का प्रमाण में, निश्चय व्यवहार में दो शामिल हो गया हैं।

ज्ञान की (पर्याय का) प्रमाण में दो शामिल हो गया हैं। द्रव्य भी हैं और पर्याय भी जानने में आती हैं। अभी पर्याय का जानना बंद कर दे और द्रव्य सामान्य को जान ले, तो प्रमाण में से अकेला स्वप्रकाशक, निश्चयनय, शुद्धनय निकालता हैं, उसको अनुभव होता हैं। आहाहा! तो सम्यक एकांत पूर्वक अनेकांत भी हो जाता हैं। द्रव्य को जानते-जानते पर्याय भी जानने में आती हैं। और द्रव्य का निश्चय में जो आया, वो मैं ये हूँ और आनंद की पर्याय प्रगट हो गई वो भी मैं हूँ। तो सम्यक एकांतपूर्वक अनेकांत, ध्येय पूर्वक ज्ञेय होता हैं।

सच्चे प्रमाण का जन्म, नयपूर्वक ही प्रमाण होता हैं। कई जीव ऐसा पकड़ते हैं प्रमाणपूर्वक नय हैं। मगर प्रमाणपूर्वक नय हैं, वो बात सही हैं। मगर किसको? जिसको अनुभव हो गया, सच्चा प्रमाण हो गया, वो प्रमाणपूर्वक नय की बात करे तो सही हैं। तेरे को तो अनुभव हुआ नहीं, और प्रमाण का ठेका लगा दिया कि प्रमाणपूर्वक नय हैं। कि नयपूर्वक प्रमाण का जन्म होता हैं। अज्ञानी को प्रमाणपूर्वक नय होता हैं कि नयपूर्वक प्रमाण होता है? कि नयपूर्वक प्रमाण होता हैं। बाद में प्रमाणपूर्वक नय का प्रयोग करे तो सम्यक हैं। ऐसे अनुभव के पहले प्रमाण, प्रमाण, प्रमाण का पक्ष में आ जावे, प्रमाण जिसका लक्षण हैं, वो भी व्यवहार हैं। क्योंकि वो पूज्य नहीं हैं। प्रमाण पूज्य नहीं हैं, प्रमाण में से शुद्धनय ही पूज्य


Version 1: http://AtmaDharma.com or http://AtmaDharma.org Please report errors to rajesh@AtmaDharma.com

हैं| निश्चयनय सच्ची हैं| तो पक्षातिक्रांत। पहले निश्चयनय आती हैं| पक्षातिक्रांत के पूर्व, अनुभव के पहले एक निश्चयनय प्रगट होती हैं| वो निश्चयनय बिल्कुल अपूर्व हैं| अनंत काल से ऐसे सविकल्प निश्चयनय भी प्रगट नहीं हुई हैं| यथार्थ निर्णय होता हैं, उस टाइम एक अपूर्व निश्चयनय प्रगट होता हैं सविकल्प, हैं मिथ्यादृष्टि, भले मिथ्यादृष्टि हैं तो भी मिथ्यात्व अभी जानेवाला हैं, ऐसा मिथ्यादृष्टि हैं| आहाहा! ये कोई ऐसा निर्णय आता हैं|

144 वीं गाथा में आएगा प्रथम निर्णय कर, बाद में अनुभव होता हैं| एस आएगा गाथा में सब। तो पहले निर्णय कर। सुना बहुत, पढ़ा बहुत, मगर निर्णय करनेवाला कोई विरला ही होता हैं| निर्णय कर ले अभी। मगर निर्णय को आगे नहीं करना। निर्णय को आगे करता हैं, उसको निर्णय ही नहीं हैं| ऐसा, जैसा आत्मा प्रत्यक्ष अनुभव में आता हैं, ऐसा परोक्ष अनुभूति में, सविकल्पदशा में, मानसिक ज्ञान में, ऐसा ही आत्मा ख्याल में आ जाता हैं| और अनुभव के बाद मिलान करता हैं, तो मिल जाता हैं कि अरे! वो बात आत्मा की तो मुझे पहले ही आ गई। ऐसे ही अनुभव हुआ। फर्क इतना हैं कि इसमें आनंद आता हैं उसमें आनंद नहीं था। उसमें अपूर्व हर्ष था, ऊपर अपूर्व हर्ष था, प्रसन्नता। क्या? वो प्रसन्नता थी, वो भी अतीन्द्रिय आनंद नहीं था। मगर उसको मालूम हो जाता हैं, अपूर्व निर्णय वाले को। किसी को तो अन्तरमुहूर्त में अनुभव होता हैं| ज्यादा से ज्यादा छह महीने में अनुभव होता ही हैं ऐसा कोलकरार हो जाता हैं तो आत्मा जानता हैं। जिसको अपूर्व निर्णय आया, बाद में अनुभव होता हैं वो, वो ही आत्मा जानता हैं| इसके बारे में एक प्रश्न उठा, कि ऐसे अपूर्व निर्णय में आता हैं, तो कोई आप उसका विवेचन करो कि क्या हैं ये? तो एक पंचाध्यायीकर्ता ने कहा कि उस अपूर्व निर्णय होने की बात वचन अगोचर हैं| आहाहा| वो निर्विकल्पवत हैं, निर्विकल्प नहीं, निर्विकल्पवत हैं| केवल अनुभवगम्य हैं। वो वचन से कहा नहीं जाता हैं| सम्यकदर्शन तो कहा जाता हैं मगर सम्यकदर्शन

ॐ


Version 1: http://AtmaDharma.com or http://AtmaDharma.org Please report errors to rajesh@AtmaDharma.com